International Journal of Information Movement Vol.I Issue III (July2016)
www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 125-129

मध्यकाल में महिलाओं का रोल और स्थिति

डॉ. परमजीत कौर
प्रवक्ता, इतिहास विभाग,
केएमआरडी जैन कॉलेज फॉर वूमैन, मलेरकोटला

सार :

प्राचीनकाल काल में महिलाओं को प्रायः सभी क्षेत्रों में कुछ स्वतन्त्रता एवं अधिकार प्राप्त थे। परिवार में उसे सम्मान का स्थान प्राप्त था। धार्मिक कार्यों में उसकी उपस्थिति महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी, कोई भी धार्मिक कार्य महिलाओं के बिना पूरा नहीं माना जाता था। लेकिन महिलाओं की यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रही। मध्यकाल में उसकी सामान्य स्वतन्त्रता एवं अधिकार सीमित हो गये। स्त्री को घर की चारदीवारी में ही रहने के निर्देश दिये गये। स्त्रियों से अपेक्षा की जाती थी कि वे पति देव तुल्य मानकर उसकी सेवा व सम्मान करे। हिन्दू व इसी तरह मुस्लिम समाज में पुरुष–प्रधान परिवार ही सामाजिक ढांचे में मान्य थे। मध्यकाल में अनेकों सामाजिक कुप्रथाओं पर्दा प्रथा, बाल विवाह, वेश्यावृत्ति, विधवा दुर्दशा, तलाक, दहेज प्रथा आदि के कारण महिलाओं की स्थिति गौण व इसका जीवन संरक्षण का जीवन बन कर रह गया था।

इन कुप्रथाओं के कारण महिलाओं की शिक्षा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। जहाँ तक नारी शिक्षा का प्रशन है वह सिर्फ सम्पन्न हिन्दू, मुस्लिम परिवारों में तो थी, परन्तु जनसामान्य नारियों की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। मुसलमानों की तुलना में हिन्दू महिलाओं की शिक्षा की कम सुविधा प्राप्त थी।

मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति प्राचीनकाल की तुलना में खराब होती चली गई। दिल्ली में सुल्तानों ने महिलाओं की स्थिति को सुधारने के प्रयत्न अधिक नहीं किये बल्कि वे युद्धों और अपने साम्राज्य का विस्तार करने में लगे रहे। मध्य काल में हिन्दू और मुस्लिम महिलाओं की स्थिति में भी काफी अन्तर नजर आया। कुल मिलाकर मध्य काल में महिलाओं की स्थिति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। यहाँ तक कि तत्कालीन धार्मिक व सुधारवादी आन्दोलनों ने भी महिलाओं संबंधी कुप्रथाओं का प्रतिकार या आलोचना करने अथवा उन्हें किसी अधिकारिक स्थिति प्रदान करने का प्रयास नहीं किया।

विशेष शब्द : मल्के, मखदूम, सूर्यमती, ललेश्वरी तारा, देवलरानी, रूपमती, अवन्त

1.0 मध्यकाल में महिलाओं का रोल और स्थिति

प्राचीनकाल में महिलाओं की स्थिति के बारे में कोई ज्यादा जानकारी नहीं मिलती है। लेकिन ऋग्वेद से महिलाओं की स्थिति के बारे में जानकारी मिलनी शुरू हो जाती है। वैदिक काल में हिन्दू समाज में स्त्रियों को सम्मानित स्थान प्राप्त था। प्राचीन काल में स्त्रियों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जैसे शिक्षा, सम्पत्ति, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, वैवाहिक आदि सभी में महत्त्वपूर्ण अधिकार प्राप्त थे। वह अपने प्रत्येक रूप में समाज के सामने एक आदर्श थी। स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी मानी गई थी। मानव जीवन के सर्वोन्मुखी विकास में नारी की अहम भूमिका रही थी।[1]

वैदिक काल में महिलाओं को जो स्थान एवं आदर प्राप्त था। वह उत्तरवैदिक काल में कम होता चला गया। सूत्र एवं महाकाव्य काल में आते–आते स्त्रियों की स्थिति और भी अधिक दयनीय हो गई। स्त्रियों पर कई प्रतिबंध लगा दिया गये, उनकी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और वैचारिक स्वतन्त्रताओं पर बंधन लगा दिये।

कुल मिलाकर प्राचीन काल से लेकर पूर्व मध्ययुग तक भारत में स्त्रियों की दशा परिवर्तनशील रही। किसी भी समाज में नारी का स्तर तत्कालीन समाज की अध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक उन्नति का प्रतीक होता है। भारत में तुर्क शासन के आरम्भ होने के साथ राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आना स्वाभाविक था। स्त्रियों के जीवन के विभिन्न आयामों को देखते हुए इस काल में मोटे तौर से उनकी दशा में पतन या गिरावट के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। हिन्दू परिवारों में प्राचीन काल की तरह सल्तनत काल में भी

महिलाओं को गृहस्वामिनी माना जाता था और कोई भी धार्मिक कार्य उसके बिना पूरा नहीं होता था। उसे पुरुष की अर्धांगिनी समझा जाता था। परन्तु इतना होते हुए भी उन्हें पूर्णतया स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी। उन्हें पुरुष के नियन्त्रण में रहना पड़ता था।[2] उसका मुख्य कार्य पुरुष की सेवा करना और जीवन के प्रत्येक चरण में उस पर निर्भर रहना समझा जाता था। हिन्दुओं के धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार लड़की का जन्म पिता के बुरे कर्मों का फल माना जाता था।[3] हिन्दुओं की मानसिकता के अनुसार स्त्री का प्रमुख कार्य पुत्र पैदा करना था और यदि वह पुत्र को जन्म देती तो उसके परिवार वाले उसका सम्मान करते, उसकी उचित देखभाल की जाती थी और ऐसा माना जाता था कि भारतीय नारी कार्य क्षेत्र घर की देखभाल तक ही सीमित था। उसके सारे प्रयत्न स्वयं की प्रतिव्रता सिद्ध करने और पति को प्रसन्न रखने में ही केन्द्रित थी, साथ ही पुरुष उसे निर्बल मस्तिक वाली और महत्त्वपूर्ण मामलों में विश्वास न करने योग्य समझता था। तथार्थ वह घरेलू मामलों में ही उसकी सहायता लेता था। निम्नवर्ग की स्त्रियों को छोड़ कर अधिकतर महिलाओं की स्थिति गृहस्थी में ठीक ही होती थी।[4]

हिन्दू परिवारों के समान ही भारत में मुस्लिम महिलाओं की दशा भी अच्छी न थी। मुसलमानों में अभी भी प्राचीन ईरानी व अरबी परम्पराओं का अनुकरण किया जा रहा था, जो स्त्रियों को हीन स्थिति में रखने के लिए उत्तरदायी थी।[5] वह पुनः विवाह कर सकती थीं। मुस्लिम स्त्रियां पूर्ण रूप से अपने पति पर निर्भर करती थी। जिससे उनकी दशा दयनीय होती थी।[6]

पूर्व मध्य काल तक आकर महिलाओं पर नियन्त्रण और अधिक कठोर हो गए तथा उस पर पुरुष का पूर्णतः एकाधिकार मान लिया गया। धर्म और समाज की रक्षा के नाम पर स्त्रियों को सुरक्षित रखने के लिए अनेक ऐसे नियम बन गए। जिनके स्त्रियों की दशा निरन्तर दयनीय होती गई। इस प्रकार अनेक बंधनों के घेरे में उनका व्यक्तित्व सिमट कर रह गया और फलतः उनका विकास रुक गया। मुसलमानों के आने से उनकी सामाजिक स्थिति में महत्त्वपूर्ण बदलाव आया। उसके सारे अधिकार सीमित कर दिये गये।

उस समय समाज में जो व्यवस्थाएँ प्रचलित हो गई थीं, उनका प्रभाव हिन्दू–मुस्लिम समाज की महिलाओं पर समान रूप से पड़ा। बहुत कम ऐसे परिस्थितियाँ थी, जो दोनों समाज की महिलाओं में अन्तर करती थी। परन्तु ज्यादातर परिस्थितियाँ एक जैसी जी होती थीं और समान रूप से उन पर प्रभाव डालती थी। समाज में भारतीय महिलाओं की स्थिति में मध्ययुगीन काल के दौरान और अधिक गिरावट आई। जब भारत के कुछ समुदायों में सती प्रथा, बाल–विवाह, बहु–विवाह, जौहर प्रथा, पर्दा प्रथा, दास प्रथा आदि। इन बुराइयों का हिन्दू–मुस्लिम समाज की महिलाओं पर गहरा प्रभाव पड़ा।[7]

आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में महिलाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। परन्तु जाति प्रथा और अलगाव की भावना से नारी की स्थिति सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक स्तर पर प्रभावहीन बन गई थी। उनका दायरा घरेलू कार्यों तक सीमित कर दिया गया, किन्तु किसान और मजदूर वर्ग की स्त्रियाँ अपवाद थी, वे घर के सारे कार्यों खाना पकाना, सफाई व अन्य घरेलू कार्यों तथा बच्चों के लालन–पोषण आदि की जिम्मेवारी तो थी वहीं पर वह अपने पतियों के साथ विभिन्न क्षेत्रों में मिलकर काम भी करवाती थीं, खेती के कार्यों में हाथ बंटवाती थी। खेती के साथ–साथ वे पशु–पालन, बुराई, कढ़ाई, सिलाई, टोकरी बनाने आदि जैसे कामों में अपने पतियों का सहयोग देती थी।[8] ग्रामीण स्त्रियाँ तो कृषि कार्यों, घरेलू काम और बच्चों के साथ इतना अधिक व्यस्त रहती थी कि उन्हें अपने मनोरंजन के लिए भी समय नहीं मिल पाता था। कुछ महिलाएँ राजघरानों में भी काम करती थी। कुछ दाइयों का[9] जो पढ़ी–लिखी महिलाएँ थीं वो शाही परिवारों में पढ़ाने का कार्य करती थीं।[10] आर्थिक रूप से महिलाओं की स्थिति हिन्दू महिलाओं की तुलना में अच्छी थी। मुस्लिम महिला को अधिकार के रूप में अपने पिता की सम्पत्ति में बराबर का अधिकार प्राप्त था।[11] हिन्दू महिलाओं के विपरीत उनका यह अधिकार विवाह के बाद भी बना रहा था।[12] मुस्लिम स्त्री की आर्थिक स्थिति को सुरक्षित रखने के लिए पति को एक विशेष धन अपनी

पत्नी को देना पड़ता था, जिसे 'मेरह' के नाम से जाना जाता था।[13] यदि कोई पुरुष दूसरा विवाह भी कर लेता था तो वह पहली पत्नी को दिया हुआ धन वापिस नहीं ले सकता था। इसके विपरीत हिन्दू महिलाओं को, अपने पति की सम्पत्ति में से कोई अधिकार नहीं मिलता था, लेकिन पति के मर जाने के बाद उन्हें पति की सम्पत्ति में से जीवन निर्वाह भर के लिए व्यवस्था भी दी जाती थी। कुछ अचल सम्पत्ति रूप से महिलाओं के अधिकारों के विभाजन की जानकारी किसी भी धार्मिक ग्रन्थों में नहीं मिलती है, परन्तु फिर भी स्त्री धन पर उनका अधिकार होता है।[14]

किसी भी काल की संस्कृति का मूल्यांकन उस समय की स्त्रियों की स्थिति से लगाया जा सकता है। मध्यकाल में स्त्रियों ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में रुचि दिखाई, वही राजनीति क्षेत्र में भी पीछे नहीं थी, शासन प्रबन्ध के क्षेत्र में भी स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। राजकीय परिवार की महिलाओं को ऊँची–ऊँची उपाधियाँ दी जाती थी, जैसे मल्के, जहाँ मखदूम जहाँ आदि।[15] इल्तुतमिश की पत्नी शाहतुर्कान को शासन सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त था। अपने प्रिय पुत्र रुकनुदीन को विलासता में डूबा हुआ देखकर उसने अपने साम्राज्य की बागडोर अपने हाथों में ले ली और स्वयं सलाह देना, राज्य कार्यों का सम्पादन करना तथा राजकीय आज्ञा देना आरम्भ कर दिया।[16]

दूसरा उदाहरण रजिया का मिलता है जिसन गद्दी पर बैठने के बाद सारी सत्ता को अपने हाथों में ले लिया। रजिया इल्तुतमिश की योग्य पुत्री थी, इससे भी कहीं वह मध्ययुगी की अद्वितीय स्त्री थी। रजिया न्यायप्रिय, चतुर, निडर और शूरवीर शासिका थी, रजिया को केवल दिल्ली की जनता और अमीरों का समर्थन प्राप्त था लेकिन मुलतान, हांसी, बदायू, लाहौर आदि के सूबेदार उसके विरोधी थे। रजिया में अद्भुत गुण विद्यमान थे। तेरहवीं शताब्दी के भारतीय सुल्तानों में उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली था। वह एक महान शासिका थी। जिसमें एक योग्य शासक के समस्त गुण विद्यमान थे।[17] रजिया ने राजपद की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए अनेक प्रशासकीय कदम उठाए और अपने विश्वास पात्र सरदारों को ही विभिन्न पदों पर नियुक्त किया। उसने पहली बार स्त्री के सम्बन्ध में इस्लाम की परम्पराओं का उल्लंघन किया और राजनीतिक दृष्टि से अपने राज्य की शक्ति को सरदारों अथवा सूबेदारों में बांटने की बजाए सुल्तान के हाथों में ही केन्द्रित करने का बल दिया।[18]

जलालुदीन खिलजी की पत्नी मल्के जहां ने अपने दामाद आलउदीन के ऊपर नियंत्रण रखने का प्रयास किया। जिससे अलाउदीन का घरेलू जीवन कष्टमय हो गया। गोंड की महारानी दुर्गावती ने 1564 में मुगल सम्राट अकबर के सेनापति आसफ खान से लड़कर अपनी जान गंवाने से पहले पंद्रह वर्षों तक शासन किया। जहांगीर की पत्नी नूरजहां ने राजशाही शक्ति का प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल किया और मुगल राजगद्दी के पीछे वास्तविक शक्ति के रूप में पहचान हासिल की।

इस प्रकार मध्ययुगीन समाज में पुरुषों की रूढ़िवादी विचारधारा होने के कारण बहुत कम महिलाओं ने राजनीतिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

स्त्री शिक्षा भारत के लिए कोई आधुनिक सभ्यता की देन नहीं है। अपितु यह यहाँ की एक महान प्राचीन परम्परा रही है। वैदिक काल में महिलाओं की अवस्था सर्वोच्च थी। उन्हें पुरुषों की भाँति ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार था। परन्तु मध्ययुग आते–आते तो यह व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई, मुसलमान आक्रमणकारियों के कारण ही बाल विवाह, पर्दा प्रथा, कन्या विक्रय, कन्या वध आदि कुप्रथाएँ समाज में प्रचलित हो गई, इन सब कुप्रथाओं के कारण स्त्री शिक्षा पर बुरा प्रभाव पड़ा। पर्दा प्रथा और बाल विवाह के कारण तो उनकी स्वतन्त्रता सीमित हो गई। इसलिए उन्हें अधिक शिक्षा न मिल सकी।[19] परन्तु कई ऐसी भी शिक्षण संस्थाएँ थी जहाँ पर हिन्दू बालक–बालिकाओं को प्राथमिक विद्यालय तक इकट्ठे पढ़ने का प्रबन्ध था।[20] मुस्लिम बालिकाएँ भी प्राथमिक स्कूल तक इकट्ठे पढ़ती थी। उसके बाद हिन्दू तथा मुस्लिम वर्ग के कुलीन तथा सम्पन्न परिवार की कन्याएँ अपने माता–पिता द्वारा व्यक्तिगत तौर पर रखे शिक्षकों या किसी विशेष संस्था से ही शिक्षा प्राप्त करती थी।[21]

यह शिक्षा उन्हें वृद्ध स्त्रियाँ, विशेषकर जो विधवाएँ होती थी उनके द्वारा प्रदान की जाती थी। मध्यकाल में साक्षर हिन्दू महिलाओं में विश्वास देवी, लखिमा देवी, चन्द्र कला देवी, लीलावती, सूर्यमती, ललेश्वरी तारा, देवलरानी, रूपमती, अवन्त, सुन्दरी, पद्मावती आदि थी।[22]

राजकीय परिवारों की शिक्षित तथा विद्या सम्पन्न कई स्त्रियों का उल्लेख प्राप्त होता है। रजिया, सुलतान जलालुदीन की पत्नी पढ़ी लिखी महिला थी। अलाउदीन की पुत्री फिरोजा भी पूर्ण शिक्षित थी, वह ज्योतिष विद्या में निपूर्ण थी। ग्यासुदीन तुगलक की पुत्री खुदावन्द बहुत पढ़ी लिखी थी।

मुगल राजकुमारियों में जहां आरा, जेबुन्निसा सुप्रसिद्ध कवयित्रियाँ थी और उन्होंने सत्तारूढ़ प्रशासन को भी प्रभावित किया।

इससे पता चलता है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्प्रदायों में महिलाओं की शिक्षा केवल धनी समृद्ध वर्गों तक सीमित थी। सामान्य वर्गों की महिलाओं की स्वतन्त्रता में पर्दा प्रथा बाधक थी, समय की कमी, इसी तरह की अन्य कुप्रथाओं के कारण अशिक्षित रहती थी। इसी तरह निम्न वर्ग की भी महिलाओं को समय और सविधाओं की बहुत कमी थी, जिससे वे शिक्षा प्राप्त न कर सकी। ग्रामीण वर्ग की महिलाओं को घरेलू कार्यों के साथ–साथ खेतों के कार्यों में भी इतनी अधिक व्यस्त रहती थीं कि उन्हें पढ़ने का समय भी नहीं मिल पाता था।[23] इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएँ अनपढ़ व पिछड़ी हुई थी।[24] पिछड़ने में विभिन्न सामाजिक बंधनों ने भी भूमिका निभाई। ऐसा लगता है कि सामान्य वर्ग की महिलाओं की स्थिति निराशाजनक एवं अत्यधिक असंतोषजनक थी।[25] इससे भी अधिक दुर्भाग्य की बात यह थी कि किसी भी शासक वर्ग और समाज की ओर से ऐसी कोई कोशिश नहीं की गई थी कि किसी सुत्यविस्थत और जागरूक ढंग से उनकी इस स्थिति विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में कोई सुधार करे। जिससे उनकी स्थिति बेहतर बन सके।

2.0 संदर्भः

1. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार, 1974, पृ. 141
2. डॉ. आशीर्वादी लाल, श्रीवास्तव, मेडिकल इण्डियन कलचर, आगरा, 1964, पृ. 22
3. के. एम. अशरफ, हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और परिस्थितियां, दिल्ली, 1968, पृ. 170
4. वही, पृ. 171
5. वही, पृ. 171–172
6. मौलवी मुहम्मद अली, द होली कुरान, भाग–1, लाहौर, 1920, पृ. 199
7. डॉ. आशीर्वाद लाल, श्रीवास्तव, पूर्वोत्तर, पृ. 23, रेखामिश्र, वीमेन इन मुगल इण्डिया, इलाहाबाद, 1967, पृ. 129
8. पी.एन. चोपड़ा, पुरीदास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, दिल्ली, 1976, पृ. 46
9. के.एम. अशरफ, हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियां, पृ. 174
10. श्री उमा शंकर मेहरा, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, आगरा, 1970, पृ. 25
11. मुहम्मद मजहरूदीन सिद्दकी, विमेन इन इस्लाम, लाहौर, 1959, पृ. 56
12. पी.एन. चोपड़ा, बी.एन. पुरी, एम. एन. दास, पूर्वोक्त, पृ. 46
13. लाकेशचन्द्र नन्द, पूर्वोक्त, पृ. 43
14. अल्तेकर, द पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, दिल्ली, 1962, पृ. 179
15. आईएच कुरेशी, एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द सल्तनत ऑफ देहली, पृ. 65
16. एल.पी. शर्मा, दिल्ली सल्तनत (700–1526 ऐ.डी.) आगरा, 1975, पृ. 85–84
17. मिनहाज–उस–सिराज, तबकाते–ए–नासिरी, अंग्रे. अनु. रेवर्टी, दिल्ली, 1963, पृ. 643
18. वही
19. पी.एन. ओझा, पूर्वोक्त, पृ. 143

20. ए.एल. श्री वास्तव, मेडिकल इण्डियन कलचर, दिल्ली, 1964, पृ. 113
21. रेखा मिश्र, वीमेन इन मुगल इण्डिया, इलाहाबाद, दिल्ली, 1967, पृ. 12
22. पी.एस. ओझा, पूर्वोक्त, पृ. 144
23. फणीचन्द्र ओझा, मध्यकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, नई दिल्ली, 1988, पृ. 160
24. के.एस. अशरफ, पूर्वोक्त, पृ. 145
25. फणीचन्द्र ओझा, पूर्वोक्त, पृ. 160